वैदिक शासन के प्रारुप की एक झलक

माता भूमिः पुत्रो ऽहं पृथिव्याः । अथर्व १२-१-१२.

वेद में राष्ट्र और राष्ट्रसंघ दोनों की कल्पना की गई है। वेद में राष्ट्र को भूमि या मातृभूमि कहा गया है। इस परिभाषा के परिप्रेक्ष्य में जितने लोग मिलकर जितने भूमिभाग को अपनी मातृभूमि समझते और मानते हैं, उतना भाग उन का राष्ट्र होता है। इसलिए राष्ट्र घटते, बढ़ते रहते हैं। वेद के अनुसार आदर्श स्थिति वह होगी जब सारा भूमण्डल एक राष्ट्र हो जाएगा। सारी मानव जाति अपने को भूमिमाता की सन्तान, और अत एव सब को अपना भाई मानेगी। उस समय देश या विदेश या राष्ट्रसंघ की कल्पना व्यर्थ हो जाएगी।

अभी तक वेद के आदर्श के अनुसार मानव, विराट (आराजक या जंगली)अवस्था से उन्नत होता होता राष्ट्र की अवस्थातक पहुंच गया है, किन्तु अभी तक राष्ट्रसंघ (आमन्त्रण) अथवा मानवराष्ट्र (भूमण्डल का एक राष्ट्र) तक नहीं उन्नत हुवा है, किन्तु वहां तक पहुंचने की प्रक्रिया चालू है।

*** उत्तम राष्ट्र - स्वराज्य**

सा नो भूमिस्त्विषिं बल राष्ट्रे दधातूत्तमे । अथर्व १२-१-८

वेद में मातृभूमि राष्ट्र या स्वराज्य शब्दपर्याय वाची है। कोई मानव समाज भूमि के जितने अंश को अपनी मातृभूमि समझता है, उतना भाग उस का राष्ट्र है, और उस मानव समाज को उसकी व्यवस्था करने का अधिकार है। यदि उस भूमि भाग पर उनका शासन है, तो यह उन का स्वराज्य है।

इस मातृभूमि को राष्ट्र मान कर स्वराज्य (शासन) चलानेवाले जन समुदाय का कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र के प्रत्येक मानव को बलवान व तेजस्वी बनाए, जिससे उनका राष्ट्र उत्तम राष्ट्रों की श्रेणी में सम्मिलित हो सके।

वयं च सूरयः, व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ।

ऋ.५-६६-६

स्वराज्य को उत्तम राष्ट्रों की श्रेणी में समिल्लित करनेके लिए मातृभूमि के प्रत्येक मानव और बुध्दिमान दूरदर्शी शासक संघ के प्रत्येक सदस्य को निरन्तर प्रयत्न करते रहना आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना कोई स्वराज (राष्ट्र) न सुराज बन सकता है, और न ही चिरकाल तक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है।

*** शासन प्रमुख राजा**

वेद में शासन के प्रमुख को सामान्यतया राजा या इन्द्र कहा गया है। हमारे यहां प्रधान मन्त्री को शासन प्रमुख बनाकर राष्ट्रपति को, नाम मात्र के लिए आधार्थ राष्ट्र प्रमुख मान लेना, हमारी मानसिक दासता का सूचक है। यह हमने अपने अंग्रेज शासकों की

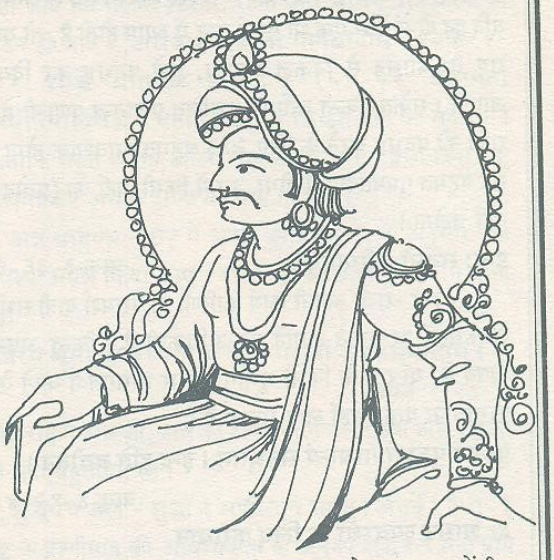

राजा और प्रधान मन्त्री पदवाली व्यवस्था के अनुकरण में किया है। अन्यथा देखा जाए तो इसमें दुगना व्यय होता है, और कभी कभी अधिकारों के झगड़े में सारी व्यवस्था प्रतिरुध्द (ठप्प) हो जाती है।

*** वेद का राजा निर्वाचित है**

वेद के अनुसार राजा न केवल निर्वाचित होगा, अपितु राष्ट्र की पांचों दिशाओं और पांचो वर्णो के सबलोग उसका निर्वाचन करेंगे।

सार्वास्त्वा राजन्प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ।

अथर्व३-४-१

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।

अथर्व ३-४-२

वह वंश परम्परागत नहीं है, किन्तु वंश परम्परागत व्यक्ति को एक बार अथवा बार बार चुना जाने से रोका भी नहीं गया है।

राजा को पदच्युत भी किया जा सकता है

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ।

अथर्व ६-८१-१

इहैवेधि मापच्योष्ठाः पर्वत इवाविचलत् ।
इन्द्र इहेव ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय ।। अथर्व ६-८१-२

राजप्रमुख को इन्द्रासन पर अधिष्ठित करते हुए, सम्पूर्ण प्रजा कामना करती है कि हे इन्द्र साम ऐश्वर्यमय राजन ! तू इस आसन पर पर्वत के समान स्थिर होकर बैठ। तुझे कोई पदच्युत न कर सके। तू ध्रूव भाव से राष्ट्र का भरण पोषण और धारण कर। जिससे सारी की सारी प्रजा तुझे इस पद पर आसीन देखना चाहे। लेकिन

यह होगा तभी जब तेरे राजा रहते हुए, राष्ट्र में न तो भ्रष्ट्राचार फैले, और न ही राष्ट्र के किसी भाग कोई विदेशी हड़पने पावे। यदि इन दोनों में से एक भी बुराई राष्ट्र में व्याप्त होती है, तो यह राष्ट्र तेरे शासन से निकल जाएगा, तुझे पदभ्रष्ट कर दिया जाएगा। संकेत-किन्तु वर्तमान प्रचलित प्रजातन्त्र प्रणाली में, राजा को पदभ्रष्ट करने के लिए २/३ बहुमत आवश्यक होगा। यह बहुमत गुप्तमतदान से होगा, इस में किसी पार्टी का (प्रतोद) नहीं चलेगा।

इन्द्रः सदसो वरीयान्। ऋक् ३-३६-६

इन्द्र -राजा अपनी कार्य कारिणी या परामर्श दात्री सभी के फैसलों पर प्रतोद लगाने का अधिकारी है। किन्तु अपने विषय में, या राष्ट्र के किसी भूभाग को पर हस्तगत न करने के प्रस्ताव पर प्रतोद नहीं लगा सकता है।

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं सनश्रुतम्। इन्द्र इति ब्रवीतन।

ऋक् ८-९२-४.

✻ शासन व्यवस्था के लिए कराधान.

राष्ट्र व्यवस्था को चलाने के लिए धन की आवश्यकता अनिवार्य है। उसे प्राप्त करने के लिए, राष्ट्र द्वारा निर्मित व्यवस्थाओं और वस्तुओं पर कर (यथा-मार्ग, विद्युत्,जल,सेना,चिकित्सा, शिक्षा आदि) लगाने के अतिरिक्त राज्य के सुशासन और सुविधा के कारण होनेवाली, वैयक्तिक आय पर भी कर लगाया जा सकता है।

यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः।

अविस्तस्मात्प्रमुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा॥

अथर्व ३-२९-१

राजा की कार्यकारिणी के सभासद जो शासन व्यवस्था के लिए नियुक्त हैं, वे व्यक्ति की स्वोपार्जित अथवा पूर्वजों द्वारा स्थापित किसी व्यवस्था या व्यवसाय या अन्यकारण से अर्जित आय का अधिक से अधिक १६ % कर रुप में ले सकते हैं। किन्तु इस कर को लगाने से पूर्व सामान्य रुप से सदाचारी जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक धन (स्वधा) की छूट देनी होगी। उस धन पर कर नहीं लगेगा। यह कर शितिपात् अविः सदाचारियों (शिति=श्वेत) के रक्षण और दुराचारियों (शितःकृष्ण) के हिंसन के लिए प्रयुक्त होगा।

कर देने वालों को सुविधा, लेकिन निर्धन पर कर भार नहीं

वेद के अनुसार (लोकेन सम्मितम्) शासन के द्वारा नियत कर, (यो ददाति शितिपादमविं स नाकमभ्येति) जो प्रजा वर्ग सदाचारी राजा को देता है, वह सुखी रहता है, अर्थात् उसे विशेष सुविधाएं मिलती हैं, किन्तु साथ ही शासन का कर्तव्य है कि उसके राष्ट्र में (अवलेन बलीय से शुल्कःन क्रियते) धनी वर्ग को सुविधाएं देने के लिए निर्धन वर्ग पर कर न लगाया जाए। अर्थात अप्रत्यक्ष कर की अपेक्षा प्रत्यक्ष कर से आय पर अधिक बल देना चाहिए। अथर्व ३-२९-३

✻ वेद मं दण्ड व्यवस्था का विधान

(दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः) राज्य द्वारा जारी दण्डव्यवस्था के भय से ही प्रजा नियन्त्रित रहती है। इसी सिध्दान्त का प्रवर्तन करती है, मानवाधिकार के नाम पर , छोटे देशों पर धौंस जमाने वाले प्रवृत्ति का वेद में कोई स्थान नहीं है।

✻ कठोर दण्ड व्यवस्था के उदाहरण

हतं द्रुहो रक्षसो भंगुरावतः। ऋक् १-१०४-१

(द्रुहः) स्वदेशा अथवा मानवमात्र के प्रति द्रोह करने वाले, (रक्षसः) प्रजा की रक्षा के लिए नियुक्त, किन्तु उत्कोच लेने, धौंस जमाने के कारण स्वयं राक्षस बन चुके शासनादिकारियों और (भंगुरावतः) तोड़ फोड़ करके समाज में आतंक फैलाने वाले अपराधियों को (हतम) मृत्युदण्ड देना चाहिए।

अथास्येन्द्रो ग्रावम्यामुभे भिनन्त्वाण्ड्यौ॥अथर्व ६-१३८-२

जो मनुष्य स्त्री का अपहरण करके बलात्कार करता है, ऐसे व्यक्तिके प्रति राजा का कर्तव्य है कि वह अपने नियत कर्मचारियों द्वारा उसके दोनों अण्डों को पत्थरों द्वारा तुड़वा कर उसे नपुंसक बनवा दे।

✻ यातुद्यान

अपने को दोषी होते हुए निर्दोष, और दूसरे निर्दोष को दोषी कहने और सिध्द करने वाले, खाद्य पदार्थों में मिलावट करनेवाले, कम तोलने वाले अथवा नमूना कुछ दिखा कर कुछ देनेवाले, निष्कारण दूसरों को पीड़ा देने वाले, निरीह या भोले लोगों को धोखा देकर ठगने वाले लोग वेद की दृष्टि में 'यातुद्यान' कहलाते हैं। इन्हें यथा स्थिति (क) लोह निर्मित शस्त्रों की लपटों द्वारा छूने (अ.८-३-४) (ग) इन की सन्तान को भी मारने और इन की आंख फोड़ने (अ.१-८३) (घ) और गो घातक के सिर को काट देने (अ. ८-३-१५) तक की दण्ड व्यवस्था है।

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एतु। अथर्व ८-३-११

यातुधान को तीन काणों से बन्धन में लेकर दण्डित करना है। अर्थात् असली यातुदान को, उसको बचाने के लिए झूठी गवाही देने वाले साक्षी को, और उसको अपराधी जानते हुए, उसकी पैरवी करने वाले वकील को भी दण्डित करना जरुरी है। वकीलों को अपराधी को चाहे जिन उपायों से बचाने की छूट देकर राज्य ने अपराध करने की खुली छूट दे रक्खी है। वेद को यह अभीष्ट नहीं है।

✻ वैदिक दण्डव्यवस्थाकी व्यवहारिकता

यद्यपि वैदिक दण्डव्यवस्था का उग्ररुप ऊपर देखा है, किन्तु

वह केवल उग्र ही नहीं, व्यवहारिक भी है, और चेतावनीमात्र तक सीमित है।

१. मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु।
वधीर्मा शूर भूरिषु ।। ऋक ८-४५-३४

सामान्य छोटे अपराधी, जैसे यातायात का उल्लंघन करनेवाले जिससे किसी का वास्तविक नुकसान न हुवा हो, तीनवार तक चेतावनी देकर भी छोड़े जा सकते हैं। तीन से अधिक बार एक ही अपराध की पुनरावृत्ति तो अवश्य दण्डनीय है, और एक सीमा के बाद उन्हें मृत्युदण्ड भी दिया जा सकता है।

२. तयोर्यत्सत्यं यतर दृजीय स्तदित्सोमो ऽवति हन्त्यसत् ।।
ऋक्१-१०४-१२

भ्रष्टाचार के चरमसीमा तक पहुंच जाने, अथवा शासन के चरमाजाने पर भले आदमियों को भी कभी कभी निषिध्द या अनैतिक मार्ग अपनाना पड़ता है। उस अवस्था में यातुधान लोग, भले और नैतिक व्यक्तियों को भी अपने जैसा दिखाकर, उनकी खिल्ली उड़ाया करते हैं। न्यायालय का कर्तव्य है कि यदि उनके द्वारा लाचारी अथवा बड़ी बुराई को रोकने के लिए छोटी अनैतिकता की गई हो, तो वह ऐसे अपराधियों का बचावकरे, या उन्हे चेतावनी दे।

इस मन्त्र में यही कहा गया है कि - शान्ति और आनन्द का देवता सोम, दोनों पक्षों के अनैतिक या अपराधी होने पर, उनमेंसे जो अधिक सरल और सत्य या सदाचार के अधिक निकट होता है, उस की रक्षा करता है, और असत् तथा कुटिलपक्ष का विनाश करता है। इसी वेद मन्त्र के आधार पर 'निषिद्धमप्पाचरणीयमापदि' सिद्धान्त की स्थापना हुई। किन्तु यह सिद्धान्त सदाचारियों के लिए है, यातुधानों के लिए नहीं। कौन सदाचारी है, और कौन यातुधान है, इसका निर्णय कर्तापक्ष नहीं करेंगे। इसका निर्णय न्यायालय की कार्यवाही या अन्तरात्मा की आवाज करेगी। यह आवाज घोषणा नहीं करती, स्वयं को दण्डित करके महात्मागांधी की तरह प्रायश्चित करती है।

३.अरातीयतो भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दोद्विषतः शिरः । अयिवृश्चाम्योजसा ।। अथर्व १०-६-१

वैदिक न्याय व्यवस्था का मूल सिध्दान्त है, सब के साथ समान व्यवहार। न्याय की दृष्टि में धैर्य, भाषा. लिंग या पद भेद से किसी के साथ भेद भाव,नहीं किया जाएगा। यदि कोई भाई बन्द या रिश्तेदार है, किन्तु वह दुष्ट हृदय होकर समाज या राष्ट्र से द्वेष वश शत्रुता कर रहा है, तो किसी बात की परवाह किये बिना उसे भी मृत्युदण्ड दिया जाएगा।

*** राष्ट्र की समृद्धि के लिए, अवधेय कर्तव्य**

१. जन संख्या नियन्त्रण - राष्ट्र में खुश हाली लाने के लिए आवश्यक है कि भूमि की उत्पादकता के अनुपात में ही जनसंख्या कायम रहे। इस लिए वेद कहता है कि मनुष्य समाज में ऐसाजघट्ट न हो जाए कि चलना फिरना, रहना और भोजन प्राप्त करना ही कठिन हो जाए। **'असंबाध मध्यतो मानवानाम्'** अथर्व १२-१-२. इसके अतिरिक्त ऋग्वेद १-१६४-३२ **'बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश'**। चेतावनी देता है कि इस बात का सदाध्यान रखनाकि बहुत सन्तान वाला गृहस्थ तथा बहुत प्रजावाला राष्ट्र अत्यन्त कष्ट अथवा दुर्गति को प्राप्त होता है।

२. अन्न बाहुल्य - राष्ट्र में अपनी आवश्यकता के अनुसार अन्न अवश्य उत्पन्न किया जाए। दूसरों पर अश्रितया निर्भय न होना पड़े।

अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इहश्रयन्ताम्।
अथर्व ५-२८-३

हमारे राष्ट्र में अन्न की, अन्न को उत्पन्न करनेवाल पुरुषों और पशुओं की सदा बहुतायत रहे।

३. शुद्धपेय जल - शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु। अथर्व १२-१-३ राष्ट्र के प्राणीमात्र की आवश्यकता के अनुरुप शुद्धजल सदा प्राप्त होते रहें।

४. प्रदूषक्षरहित वातावरण - अथर्व वेद के चतुर्थ मण्डलके २४ से २९ तक के सूक्तों में, वातावरण की शुद्धि के पोषक मृगार ऋषिने, अग्नि, इन्द्र, सविता, वायु, द्यावा पृथिवी, मरुतों और मित्रारुणौ से, (जो प्राकृतिक शक्तिओं के अधिष्ठाता देव हैं) प्रार्थना की है कि वे हमारे राष्ट्र को किसी भी प्रकार हिंसा अर्थात् न्यूनता या अधिकता के कारण होने वाली हानि से बचाए रक्खें।

५. उषाकाल जागरण अर्थात् रात्रि क्लबों पर नियन्त्रण -
त्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।
अथर्व १२-१-१५

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में ऊषाकाल जागरण की आदत को दृढ़मूल करने का प्रयत्न जरुरी है, क्योंकि उदित होता हुआ सूर्य अपनी किरणोंसे अमृत (आरोग्य, दीर्घ जीवन, मन की शान्ति, बुध्दि की प्रखरता) की वर्षा करता है। अथर्व ९-८-२२ में कहा है कि सूर्य मस्तिष्क और हृदय के रोगों को दूर करता है।

' स नो देवः सविता सहावा, मर्तभोजनमद्य रासतेनः '
ऋ १-४५-३

इसलिए विदेश के अनुकरण में प्रतिदिन बढ़ने वाले रात्रि क्लबों के प्रचलन को अनुत्साहित और प्रतिबन्धित करना चाहिए

(क्रमशः)

- मनोहर विद्याअलंकार
५२२, ईश्वर भवन,
खारी बावली, दिल्ली -११०००६

वैदिक शासन के प्रारुप की एक झलक

(गतांक से आगे)

राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक कल्याणकारी धारणाएं

१) भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।

अथर्व १९-४-११

राष्ट्र का कल्याण चाहने वाले मन्त्रियों को ऋषि तुल्य जीवन व्यतीत करते हुए, क्रान्तदर्शी बनकर पहले स्वयं तप और त्याग की दीक्षा लेकर, जनता के लिए नियमों का निर्माण करना चाहिए।

२) घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्य : ,

चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् । अथर्व २-३५-४

राष्ट्र निर्माण इन घोर (उदार तथा पक्षपात रहित) क्रान्तदर्शी शासकों को प्रजा सदा नमन करती है, क्योंकि इन की दृष्टि सदा सब के लिए समान, और मन सदा सत्य का आग्रही रहता है। ये अपने रिश्तेदारों और उच्च पदाधिकारियों को दण्ड देने में उग्र- कठोर, और गरीब, निरीह जनता के अपराधों को जाचने में उदार होते हैं।

३) जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् । अथर्व १२-१-४५

इन ऋषि तुल्य शासकों की व्यवस्था, भिन्न भिन्न भाषा और धर्म वालों के साथ वैसी ही सद्भावपूर्ण रहती है, जैसी एक घर में रहने वाले व्यक्तियों के साथ माता का व्यवहार सद्भावना पूर्ण होता है।

४) विशो मे ऽङ्गानि सर्वतः ।

यजुः २०-८(ऋषिः प्रजापतिः। देवता-राजा ।)

प्रजापालक राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को अंगोकी तरह समझकर, उनके सुख दुःख की परवाह करे, और उनकी योग्यता के अनुसार उनसे काम ले।

प्रजा की राजा से अपेक्षाएं

प्रजा शासक या राजा से सदा यह अपेक्षा रखती है कि राष्ट्र में शान्ति हो, न्याय का शासन हो। या तुफान आतंक फैलाकर समाज को भयत्रस्त न कर सकें, जिससे उनका जीवन आसानी से, आजीविका अर्जन करते हुए, व्यतीत हो सके। इस में सब से बड़ी बाधा पड़ौसी राष्ट्रों के द्वेष पूर्ण व्यवहार से होती है। इसलिए वह राजा से निम्न मन्त्रमें अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करती है कि -

१)योऽस्माँश्चक्षुषा मनसा चित्याकूत्याच यो

अघायुरमिदासात् । त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन्कृणु स्वाहा ।।

अथर्व ५-६-१०

हे अग्निसम तेजस्वी राजन् ! यदि हमारे राष्ट्र की प्रजाकी ओर कोई

कुदृष्टि से देखता है, अथवा मन में दुर्भावना रखता है, अथवा अपने ज्ञान और अशिव संकल्प के द्वारा हमें क्षीण या विनष्ट करना चाहता है; उन सब को अपने वज्र अस्त्रों से, वज्रास्त्र शून्य कर दीजिए। इस के लिए हम प्रजाजन अपनी सुख सुविधाओं तथा प्राणों तक का बलिदान करने को उद्यत हैं। वज्र में प्रक्षेपास्त्र भी सम्मिलित हैं।

संकेत- हमारे वज्र आयुध किसी पड़ौसी से कम शक्ति शाली अथवा परिमाण में कम नहीं होने चाहिए। उनके निर्माण और संग्रह में हमें किसी महाशक्ति के दबाव में नहीं आना चाहिए।

२) जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः ।

जहि मे सर्वां दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ।।अथर्व १९-२९-९

हे राष्ट्र के शिरोमणिराजन् ! तथा शत्रुओं का विदमृण करने वाले। प्रमुख सेनाधिपति ! हमारे से ईर्ष्या और द्वेष करने वाले, मौके ब मौके सेना द्वारा हमला करने वाले दुष्ट तथा कुटिल हृदय वाले शत्रुओं को मृत्यु के हवाले करदे।

यहां इन दो सुक्तो के १९ मन्त्रोंमें जलाने, मसलने, तोड़ने,

बींदने काटने, पीसने, भेदने आदि पृथक् पृथक क्रियाओं द्वारा शत्रु को जड़मूल से नष्ट करने की, प्रार्थना रूप में अपेक्षा की गई है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेद के सिद्धान्त के अनुसार, बाह्य (विदेशी) या आन्तर स्वदेशी किसी भी शत्रु के साथ कोई रियायत नहीं बरतनी चाहिए। और स्पष्ट शब्दों में देखिए -

३) अदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यः॥

ऋक १०-१०३-१

तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात्।

अथर्व २-३-६

शरव्ये गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः।

यजु : १९-४५

अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम्॥

साम (१८११) २२-८-२

सामदेव जो उपासना वेद माना जाता है, उसके अन्तिम अध्यायके २४ मन्त्रों में शत्रु विनाश की प्रार्थना और उपाय बताए गए हैं। इनमें से १३ मन्त्र शेष तीनों वेदों में भी हैं। इस से स्पष्ट है कि वेद आन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के शत्रुओं के साथ किसी प्रकार की रियायत किये बिना उन्हें समाप्त करने का सुझाव देता है। इस दृष्टि से अपर प्रत्येक वेद में से एक एक मन्त्र या उसका अंश लिया है। इनमें कहा है

(क) हमारे इन्द्र-राजा को वीर, अजेय, सेनाओं को पराजित किया जासकने के सामर्थ्य से अतीत होना चाहिए। और इसके लिए उसे शत्रुओं के प्रति अदय अक्षत्रि निर्दय होना चाहिए।

(ख) शत्रुओं को अपने हथियारों के घुसे और निराशा से इतना अन्ध कार वृत्त देना चाहिए कि वे अपने और पराये की पहचान ही न कर सकें।

(ग) हमारे फेंके गए आयुध शत्रुओं पर इस प्रकार गिरें और उन्हें प्रताड़ित करें कि उन में से कोई भी बचने न पावे।

(घ) अन्धे और शीर्षविहीत सर्पों की तरह, हमारे शत्रु अपने विषगर्भ आयुधों को प्रयुक्त करने में असमर्थ हो जाएं। और हमारी सेना के वीर उन के श्रेष्ठ वीरों, और अधिकारियों को चुनचुन कर मार सकें।

शिक्षा स्वास्थ्य और चिकित्सा

राजा के कर्तव्यों में इन तीनों मुद्दों के प्रबन्ध का बड़ा महत्व है। राष्ट्र को सुखी और समृध्द बनाने के लिए, इन तीनों का सबके लिए न्यूनतम व्यय में सुलभ करना परम आवश्यक है। इन तीनों विषयों के विचार अथर्ववेद में स्थान स्थान पर वर्णित हैं। उनको एकत्र करके उन से लाभ उठाया जा सकता है। किन्तु इन तीनों के सम्बन्ध में वेद का एक दृष्टिकोण सुनिश्चित है। इन तीनों को प्राप्त करने के लिए प्रकृति के अधिक से अधिक निकट रहते हुए पंञ्चमहाभूतों के संपर्क और उनके सदुपयोग से इन तीनों की प्राप्ति में बहुत सुविधा हो जाती है।

शिक्षा- शिक्षा नो अस्मिन्पुरुहूत यामनि, पिता पुत्रेभ्यो यथा।

अथर्व २०-१९-१

जैसे पिता आचरण से पुत्र को शिक्षा देता है, वैसे ही गुरु शिष्य को शिक्षा दे।

स्वास्थ्य- अग्ने तौलस्य प्राश्यन यातुधानान् विलापय।

अथर्व १-१-२

हितमुक्, मितभुक्, कालभुक् बनो, रोगकृमि भूखे मर जाएंगे।

चिकित्सा- आवात वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्व भेषजः। अथर्व४-१३-३

उषःकाल भ्रमण और प्राणसाधन सब रोगों का इलाज है।

अन्तिम कामना

आ यद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाये यतेमहि स्वराज्ये॥ ऋक् ५-६६-६

ऋषिः- रातहव्य आत्रेयः।देवता-मित्रावरुणौ।
छन्दः-अनुष्टुष्।

परमेश्वर हम पर ऐसी कृपा करेकि-

हे राजन्! आय के मित्रवत् व्यवहार करने वाले (स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा रक्षा आदि) तथा वरुणवत् नियन्त्रण का व्यवहार करने वाले (पुलिस, न्याय, सेना, सुरक्षाबल आदि) दोनों प्रकार के विभाग अपना दृष्टिकोण व्यापक और उदार बनाए रक्खें। तदनन्तर ये दोनों विभाग, हम सामान्य प्रजाजन और बुध्दिजीवी विद्वत्जन, सभी मिल कर स्वराज्य-प्राप्त अपने राष्ट्र को उत्तम सुराज्य बनाने का प्रयत्न करें, क्योंकि यह कार्य अत्यन्त विस्तृत और सब के सम्मिलित प्रयत्न से ही संभव हो सकता है।

यदि हम अपने राष्ट्र को, श्रेष्ठ और प्रेष्ठ गिने जानेवाले राष्ट्रों में सम्मिलित करा लेते हैं; तो यह समझा जाएगा कि सभी राष्ट्र मिलकर संपूर्ण भूमण्डल को 'एकराष्ट्र' बनाने की ओर एक कदम आगे बढ़ गए हैं।

- मनोहर विद्यालंकार.
५२२, ईश्वरभवन खारी बावली,
दिल्ली - ११०००६